© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

# इक्कीसवीं शताब्दी में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की सामान्य प्रवृत्तियाँ

डा.विभाष चन्द्र
प्रशिक्षित स्नातक शिक्षिक
केन्द्रीय विद्यालय क्रम सं.2, गया

**शोध आलेख सार–** वैश्वीकरण, उदारीकरण, नारी सशक्तीकरण तथा पर्यावरण आदि के क्षेत्रों में संस्कृत साहित्य के योगदान की ओर समालोचकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। यजुर्वेद में **यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्** का उद्घोष किया गया है। ऋग्वेद में **संगच्छध्वम् संवदध्वम्** की भावना व्यक्त की गई है। यजुर्वेद में पृथ्वी, आकाश, औषधि, वनस्पति आदि की शान्ति एवं समृद्धि की कामना की गयी है। जीवन को दीघार्यु, स्वस्थ एवं सबल होने की कामना अभिव्यक्त की गई है।

**मुख्य शब्द–** वैश्वीकरण, उदारीकरण, नारी, सशक्तीकरण, पर्यावरण, साहित्य।

---

इक्कीसवीं सदी का आरम्भ विश्व के क्षितिज पर अनेक नवीन समस्याओं एवं विषयों के आगमन के साथ होता है। इस समय अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक विषयों पर नवीन ढ़ंग से चिन्तन–मनन आरम्भ हुआ। वैश्वीकरण, बाजारीकरण, उदारीकरण, पृथ्वी के अस्तित्व पर संकट, पर्यावरण, निरक्षरता–निवारण आदि विषयों पर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। कहा जाता है कि आज दुनिया छोटी होती जा रही है और समाज बड़ा होता जा रहा है। सम्पूर्ण विश्व एक नीड बन गया है, जिसमें विभिन्न धर्मों, समुदायों, देशों तथा क्षेत्रों के लोग मिलकर उपर्युक्त समस्याओं पर विचार–विर्मश करने को तत्पर हो रहे हैं। पुरुष एवं स्त्रियों के कार्य–क्षेत्रों का भेद मिट रहा है। न केवल शिक्षा के क्षेत्र में अपितु प्रशासन, सेना, विभिन्न व्यवसाय तथा अन्तरिक्ष यात्राओं में भी महिलाओं की भागीदारी तेजी से बढ़ रही है। आज शायद ही कोई क्षेत्र हो जिसमें महिलायें बढ़–चढ़ कर हिस्सा नहीं ले रही हो। नारी शक्तीकरण पर बहुत विस्तार से विवेचन हो रहा है।

इस वैश्वीकरण, उदारीकरण, नारी सशक्तीकरण तथा पर्यावरण आदि के क्षेत्रों में संस्कृत साहित्य के योगदान की ओर समालोचकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। यजुर्वेद में **यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्** का उद्घोष किया गया है। ऋग्वेद में **संगच्छध्वम् संवदध्वम्** की भावना व्यक्त की गई है। यजुर्वेद में पृथ्वी, आकाश, औषधि, वनस्पति आदि की शान्ति एवं समृद्धि की कामना की गयी है। जीवन को दीघार्यु, स्वस्थ एवं सबल होने की कामना अभिव्यक्त की गई है। वहाँ ऋषि न केवल अपने अकेले कल्याण की कामना (एकवचन) में करते हैं, अपितु समस्त लोकों के सुख एवं समृद्धि की कामना ( बहुवचन ) में करते है।

समाज में घट रही घटनाओं का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर निश्चित रुप से पड़ता है। अत: कवियों, लेखकों एवं आलोचकों की लेखनी से तत्कालीन स्थितियों का वर्णन स्वभाविक रुप से नि:सृत होता रहता है। प्राचीन काल में संस्कृत के कवियों में अपना परिचय देने की परम्परा नहीं थी। अत: कालीदास, भवभूति आदि ने अपने बारे में कहीं कुछ नहीं लिखा है, फिर भी समालोचक उनके स्थितिकाल का निर्धारण अन्त: प्रमाण के कारण करते है, अर्थात् उन्होंने जिन राजाओं या अन्य कवियों या घटनाओं का कहीं कुछ संकेत अपने ग्रन्थों में दिया है वहीं उनके काल निर्धारण में प्रमाण के रुप में प्रस्तुत किया जाता है। कहने का तात्पर्य है कि किसी भी ग्रन्थ में तत्कालीन घटनाओं एवं स्थितियों का संकेत प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से अवश्य ही देखा जाता है।

इक्कीसवीं शताब्दी में प्रकाशित होने वाली संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का अवलोकन करने पर उनमें लिखित आलेखों से इस काल खण्ड की घटनाओं का विवरण निश्चित रुप से विदित होता है। यह भी सत्य है कि कोई समस्या एकाएक उत्पन्न नहीं होती, अपितु उसके बीज बहुत पहले से अंकुरित होते रहते है और दीर्घ काल के बाद उसके प्रतिफलन होने पर उस पर गहराई से मनन-चिन्तन विद्वानों के बीच होने लगता है। उदाहरण के लिए जनसंख्या वृद्धि की समस्या को हम लें तो स्पष्ट है कि जिनके बच्चे कम है वे अपने बच्चों का पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था सम्यक् प्रकार से करने में समर्थ होते हैं। उन्हें अधिक आर्थिक सामाजिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता है। जबकि बहुत बच्चों वाले अभिभावकों को बच्चों के लालन-पालन में कठिनाई तथा आर्थिक संकट से गुजरना पड़ता है। इस समस्या को लेकर संस्कृत साहित्य पर नजर डालें तो दृष्टिगत होता है कि ई. पूर्व सातवीं शताब्दीं या उससे भी पहले के काल खण्ड में वर्तमान महर्षि व्यास ने अपने ग्रन्थ 'निरूक्त' में लिखा हैं -

**बहुप्रजा: कृच्छ्रम् आपद्यते इति परिव्राजका:।-** निरूक्त.2.2

अर्थात् उस समय जनकल्याण के लिए कार्यरत परिव्राजक सम्प्रदाय के लोग आम जनता के बीच यह प्रचारित करते थे कि बहुत सन्तान वाले व्यक्ति कष्ट को प्राप्त करते है। इक्कीसवीं शताब्दी में यह समस्या सुरसा की तरह मुँह बाए खड़ी है। इसके कारण वैज्ञानिक प्रगति का लाभ लोगों तक उचित रुप में नहीं पहुँच पाता है। अत: इस समस्या के समाधान के लिए दो से अधिक बच्चे पैदा नहीं करने के लिए अनेक प्रकार के प्रोत्साहन सरकार की ओर दिये जाते हैं। प्राय: संस्कृत के साथ अन्य भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में इस विषय को लेकर अनेक आलेख लिखे जा रहे हैं।

इसी प्रकार निरक्षरता को भी मानव जीवन का एक बड़ा अभिशाप माना जाता है। हितोपदेश में धर्म के आठ प्रकार बताये गए हैं - यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, धैर्य, क्षमा और अलोभ। इनमें अध्ययन का महत्त्व सभी युगों में रहा है। आज लोगों को शिक्षित बनाने के लिए सरकार एवं स्वंयसेवी संस्थायें अनेक प्रकार की योजनायें चला रही हैं, जिनमें आँगनबाड़ी, प्रौढ़-शिक्षा योजना, जन शिक्षा योजना, अक्षराचंल योजना आदि प्रमुख है। आज के युग में यह बिल्कुल प्रासंगिक है, क्योंकि किसी भी जाति, वर्ण या धर्म का व्यक्ति साक्षर एवं शिक्षित होने के बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर उँचें पदों पर जाता है, तो समाज के उच्च वर्ग या जाति के लोग भी उसके आगे पीछे मँडराने लगते है,

क्योंकि वह व्यक्ति उनके कार्य साधन में सहायक होता है। यह समस्या भी बिल्कुल आधुनिक नहीं है, क्योंकि पहले भी अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दिलाने वाले माता पिता को शत्रु तथा बैरी कहा गया है। हितोपदेशकार कहते है –

**माता शत्रुः पिता बैरी येन बालो न पाठितः।**

**न शोभते सभा-मध्ये हंस मध्ये वको यथा।।**

अर्थात् अशिक्षित व्यक्ति विद्वानों की सभा में उसी प्रकार सम्मान नहीं पाता है; जैसे हंसों के बीच बगुला को कोई नहीं पूछता।

पर्यावरण की समस्या को हम लें तो इसके लिए भी ऋषियों ने काफी विचार किया है। वृक्षों, पौधों एवं नदियों के सम्वर्धन एवं संरक्षण को ध्यान में रखकर ही इन्हें देवता मानकर पूजा करने की परम्परा प्राचीन काल से रही है। इस क्रम में हम देखतें हैं कि वट एवं पीपल के पेड़ सबसे अधिक छायेदार होते हैं, और इससे भरपूर मात्रा में ऑक्सीजन प्राप्त होता है। पीपल के बारे में वैज्ञानिक कहते हैं कि ये रात में भी ऑक्सीजन ही छोड़ते हैं। वट वृक्ष की छाया को शीतकाल में गर्म तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतल बताया गया है –

**कूपोदकं वटच्छाया श्यामा स्त्री चेष्टिका गृहम्।**

**शीतकाले भेवद् उष्णम् उष्णकाले च शीतलम्।।**

अर्थात् कुऐं का जल, वट वृक्ष की छाया, श्यामा स्त्री और ईंट का घर – ये सभी शीतकाल में गर्मी एवं ग्रीश्म ऋतु में शीतलता प्रदान करते है। अतः वट एवं पीपल को देवता मानकर इसकी पूजा प्राचीनकाल से होती रही है। इसलिए इन वृक्षों को काटना आवश्यक मानने पर भी इन्हें काटने को जल्दी कोई तैयार नहीं होता।

**धर्मो रक्षति रक्षितः** के तर्ज पर **वृक्षो रक्षति रक्षितः** यह उद्धघोष किया जाता है। इसी प्रकार नदी पूजा की प्रथा बहुत पुरानी रही है। भारत की बड़ी नदियाँ – गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी आदि के जल को पवित्र करने वाला कहा गया है और प्रातःकाल पूजा के समय इन नदियों का आवाह्न किया जाता है –

**गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।**

**नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्ननिधिं कुरू।।**

इसी प्रकार आज के युग में नारी सशक्तीकरण की बहुत चर्चा होती है। उन्हें समानता, स्वतन्त्रता एवं सम्पन्नता के अधिकार पर बहुत बल दिया जाता है। जिससे उन्हें गृहकार्य के अतिरिक्त सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से सबल बनाया जा सकें और उसे परिवार एवं समाज में उचित सम्मान प्राप्त हो सकें। इन विषयों को लेकर गहरे चिन्तन – मनन के साथ परिसंवाद एवं संगोष्ठियों का आयोजन हो रहा है। वैदिक साहित्य में इस बात के बहुत से पुष्ट प्रमाण हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उस युग में नारियों की स्थिति बहुत ही उन्नत थी। वे ऋषिकायें होती थीं और पुरुषों के समान वे भी मन्त्रों का साक्षात्कार करती थीं। उन ऋषिकाओं में अपाला, घोशा, दक्षिणा, लोपामुद्रा, सरस्वती आदि की गणना परोक्ष रूप से की जाती है। ऋग्वेद में एक ऋषिका कहती है –

**मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।**

**उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।**

-ऋग्वेद- 10.159.03.

अर्थात् मेरे पुत्र शत्रुओं के वध करने में समर्थ है, मेरी पुत्रियाँ सजी-धजी सौभाग्यवती होती है, मैं परिवार में सभी के स्नेह को जीतने वाली हूँ तथा पति की दृष्टि में मेरा बहुत अधिक सम्मान है।

ऐसे कथन उस काल में नारी की उन्नत अवस्था को अभिव्यक्त करते हैं।

उपर्युक्त सभी विषय इक्कीसवीं शताब्दी में ज्वलन्त समस्या के रुप में मान्य हैं। इन विषयों को लेकर संस्कृत पत्रिकाओं में बहुसंख्य आलेख प्रकाशित होते हैं।

अत: इक्कीसवीं शताब्दी में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं के आलेखों की ये सामान्य प्रवृतियाँ हैं, जों लोगों का ध्यान समस्या के समाधान की ओर आकृष्ट करती है। इनके साथ ही संस्कृत के विभिन्न विषयों - व्याकरण, साहित्य, वेद, ज्योतिष आदि से सम्बद्ध आलेख भी इनमें प्रकाशित होते है। जिनमें आधुनिक दृष्टि से विवेचन की प्रवृत्ति रहती है। अत: शाश्वत विषयों के साथ आधुनिक विषयों के आलेखों से युक्त ये पत्रिकायें वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को विभिन्न विषयों से परिचित कराने की ओर अग्रसर है।

बीसवीं शताब्दीं में जिन पत्र-पत्रिकाओं का आरम्भ हुआ; उनमें बहुसंख्य पत्र-पत्रिकायें इक्कीसवीं शताब्दी में भी प्रकाशित हो रही हैं। समय-समय पर अनेक विश्वविद्यालयों से कुछ पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है; जिनमें विविध विषयों से सम्बद्ध आलेख रहते है। ये पत्रिकायें नियमित रुप से प्रकाशित नहीं होती है; क्योंकि इनके प्रकाशन का कोई स्थाई स्रोत नहीं होता है। राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान अथवा विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग या अन्य ऐसी संस्थानों से वित्तीय सहायता प्राप्त होने पर संस्कृत विभागों, विश्वविद्यालयों अथवा संस्कृत संस्थानों के द्वारा किसी मुख्य विषय को लेकर संगोष्ठि आयोजित की जाती है। इस अवसर पर प्राप्त आलेखों के संग्रह से पत्रिका अथवा पुस्तकों का प्रकाशन होता है। स्वतन्त्र रुप से भी पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है; जिससे उत्साहित संस्कृत सेवी जन विद्वानों से लेख प्राप्त कर इनका प्रकाशन कराया जाता है।

इस सन्दर्भ में देहरादून से प्रकाशित पाक्षिक पत्र **वाक्** उल्लेखनीय है। इसका आरम्भ 2001 ई. के अक्टूबर महीने में हुआ था। तब से यह नियमित रुप से निर्धारित अवधि में प्रकाशित हो रही है। इसमें स्थानीय एवं राष्ट्रिय समाचारों का संग्रह रहता है। इसका आकार छोटा होने से इसमें स्थायी महत्त्व के विषयों का प्रकाशन सम्भव नहीं हो पाता। संस्कृत जगत के समाचारों को इसमें प्रमुखता दी जाती है।

मेरठ से प्रकाशित **लोकभाषा** में कुछ आलेख संस्कृत के रहते हैं तो कुछ हिन्दी में भी निबद्ध होते हैं। इसका प्रकाशन सन् 2002 ई. में आरम्भ हुआ था। इस **मासिक** का प्रमुख उद्धेश्य लोगों को संस्कृत भाषा का ज्ञान प्रदान करना है। व्याकरण के नियमों तथा सन्धि आदि के शिक्षण इसके द्वारा किये जाते है। प्राचीन ग्रन्थों के कुछ प्रमुख श्लोक एवं उनके अर्थ भी इसमें सम्मिलित किये जाते है।

सन् 2005 ई. में पुरी से शिक्षासुधा-सम्पादन-समिति के सौजन्य से **शिक्षा-सुधा** नामक **त्रैमासिक** पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसमें विविध संस्कारों के साथ आधुनिक विषय मानवाधिकार, योग्य अध्यापकों का निर्माण, शास्त्र ज्ञान से परिचय आदि विषयों पर आधारित विद्वानों के आलेख इसमें प्रकाशित होते है।

सन् 2006-07 ई. में कश्मीर विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग द्वारा **पद्मपराग** नामक **वार्षिक** शोध पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसमें विविध विद्वानों के आलेख प्रकाशित हो रहे हैं। ये आलेख विविध विषयों से सम्बद्ध एवं शोधपरक होते हैं। शास्त्रीय विषयों पर शोध करने वाले छात्रो के मार्गदर्शन के लिए यह पत्रिका उपयोगी है। इसके प्रथम अंक में रीति सिद्धान्त, शब्द-ब्राह्मण, बौद्ध धर्म, ज्योतिष आदि से सम्बद्ध आलेख प्रकाशित होते हैं। ये आलेख संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में रचित है।

**देवसायुज्यम्** नामक मासिक संस्कृत-पत्रिका का प्रकाशन वडोदरा से सन् 2007 ई. में आरम्भ हुआ। इसमें विविध शास्त्रों से सम्बद्ध आलेखों के अतिरिक्त आधुनिक विषयों के विवेचन परक आलेख रहते है, साथ ही संस्कृत जगत के समाचारों को भी सन्निविष्ट किया जाता है।

राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान, मानित विश्वविद्यालय, नवदेहली से सन् 2009 ई. में **संस्कृत-विमर्शः** का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके प्रकाशन का श्रेय वहाँ के कुलपति प्रो. राधा वल्लभ त्रिपाठी को प्राप्त है। यद्यपि यह पत्रिका पहले भी प्रकाशित होती थी। बीच में इसका प्रकाशन किन्हीं कारणों से अवरूद्ध हो गया था। नवश्रृंखला में इसका प्रकाशन पुनः आरम्भ हुआ है। इसमें शोध सम्बन्धी आलेख प्रकाशित होते हैं। कुछ नए तथ्यों का भी उद्घाटन इसमें हुआ है, जैस - महाकवि कालिदास को अनेक प्रमाणों के द्वारा महान् वेदान्ती सिद्ध किया गया है। इस पत्रिका में संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी तीनों भाषाओं में आलेख सम्मिलित किये जाते हैं।

इसी तरह कुछ और भी पत्रिकायें इक्कीसवीं शताब्दीं में प्रकाश में आ रही है, जिनमें विविध विषयों से सम्बद्ध आलेख रहा करते हैं। इनमें कुछ सम-सामयिक महत्त्व के हैं तो कुछ स्थायी महत्त्व से सम्बद्ध होते हैं।

**सन्दर्भ सूची -**


1. संस्कृत के विद्वान् तथा पण्डित - रामचन्द्र मालवीय, काशी, 1972 ई.
2. संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास- - डॉ. राम गोपाल मिश्र, दिल्ली, 1979 ई.
3. India: What can it teach us ? - Maxmullar
4. World order: Old and New Oxford - Noam Chomsky, 1994
5. पराड़कर जी और पत्रकारिता - लक्ष्मीशंकर सरस्वती व्यास, इलाहाबाद, 1927 ई.
6. समाचारपत्रों का इतिहास - अम्बिका प्रसाद वाजपेयी
7. पत्र और पत्रकार - कमलापति त्रिपाठी, वाराणसी, 1959 ई.